मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शांतरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिंधुः ॥३२॥

यह जीव अधिकार का अन्तिम कलश है न? '**एषः भगवान् अवबोधसिन्धुः**' एषः यह चैतन्य प्रत्यक्ष भगवान आत्मा। एषः यह चैतन्यप्रत्यक्ष, चैतन्य लोक, ऐसा भगवान अवबोध सिन्धु... भगवान अर्थात् आत्मा। है न भगवान आत्मा, ज्ञानसमुद्र अवबोध सिन्धु, यह तो ज्ञानसिन्धु है, ज्ञान का पात्र है, ज्ञानस्वरूप ही है। एष प्रत्यक्ष प्रभु, चैतन्य

भगवान आत्मा ज्ञानसमुद्र है, ज्ञानसमुद्र है। आहाहा! **'विभ्रम तिरस्करिणीं भरेण आप्लाव्य'** यह विभ्रमरूपी आड़ी चादर थी; जैसे बड़े समुद्र में किनारे एक चादर हो, चार हाथ की, तो मनुष्य उस समुद्र को नहीं देख सकता, क्योंकि स्वयं चार हाथ का ऊँचा हो और चार हाथ की चादर आड़ी हो; वैसे भगवान आत्मा, विभ्रमरूपी आड़ी चादर थी – राग और पुण्य आदि मेरे हैं — ऐसे मिथ्यात्वरूपी परिणमन की आड़ इसे थी। आहाहा! **विभ्रमरूपी आड़ी चादर...** इसे यह भ्रम था।

जो बहिर्लक्ष्यी रागादि भाव है, वे मेरे हैं और वही मेरा अस्तित्व है – ऐसा जो विभ्रम – मिथ्यात्व का परिणमन था। यहाँ कर्म की बात नहीं है; स्वरूप से विपरीत दृष्टि जो राग और पुण्य आदि के विकल्प एक समय की पर्याय जितनी बुद्धि थी, वह विभ्रम था, मिथ्यात्वरूपी आड़ी चादर थी; इसलिए भगवान ज्ञानसमुद्र दिखता नहीं था। आहाहा!

उस विभ्रम, आड़ी चादर को **'भरेण आप्लाव्य'** समूलतया डुबोकर। आहाहा! इसने नाश कर डाला। विभ्रम और मिथ्यात्वरूपी परिणाम का व्यय करके। **'प्रोन्मग्नः'** प्र – उन्मग्न, प्र – उन्मग्न – प्रकष्टे उन्मग्न; जैसा स्वरूप है, वैसा उन्मग्न, पर्याय में बाहर उछला। आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञानसिन्धु, इस विभ्रम की आड़ी चादर के कारण ज्ञात नहीं होता था, उस विभ्रम की चादर को / भ्रम को डुबो दिया, व्यय कर दिया; जो ऐसा उत्पाद था, आहाहा! उसका व्यय कर दिया। आहाहा! स्वयं ही उत्पाद हुआ था, ऐसा अब कहना है। **'प्रोन्मग्नः' स्वयं सर्वांग प्रगट हुआ है;...** आहाहा! क्या शैली!

स्वरूपनाथ चिदानन्द भगवान परम परमेश्वर स्वरूप ही आत्मा (है)। उसे विभ्रम — राग, पुण्य, दया, दान, विकल्प आदि मेरे हैं — ऐसा जो विभ्रम / मिथ्यात्वरूप परिणमन... आहाहा! उसे व्यय करके, नाश करके और **'अवबोधसिन्धुः'** ज्ञान का समुद्र प्रभु, वह पर्याय में, प्र उन्मग्नः — पर्याय में प्रकृष्टरूप से उन्मग्न / बाहर आया। आहाहा! जैसा इसका भगवान-आत्मा का स्वभाव था... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति के आश्रय की शरण लेने पर विभ्रम की चादर नाश हो गयी और स्वयं पर्याय में प्र उन्मग्न, प्र – विशेष, उन्मग्न – उत्पाद उछला। आहाहा! शान्ति और

आनन्द की दशा, प्र विशेष, उन्मग्न-प्रगट हुई। वस्तु तो वस्तु - ध्रुव थी, उस ध्रुव की दृष्टि से विभ्रम का नाश हुआ और जैसा उसका स्वरूप था, वैसा पर्याय में प्र-उत्कृष्ट उन्मग्न आया। वह नदी नहीं आती - उन्मग्न-निमग्न नदी ? वैशाख पर्वत में एक नदी ऐसी है निमग्न, उसमें जो कोई चीज पड़े उसे नीचे ले जाती है और एक नदी ऐसी है कि जो कोई चीज पड़े, उसे ऊपर लाती है। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, तब इस विभ्रम का नाश हुआ और पर्याय में प्रकृष्टपने उन्मग्न, उछला। उत्कृष्टरूप से परिणमित हुआ, ऐसा। उछला अर्थात् '**प्रोन्मग्नः**' आहाहा! उछलंती - फिर आयेगा, परन्तु यहाँ प्रगट हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द और चैतन्यसिन्धु प्र-उन्मग्न, अकेला उन्मग्न नहीं, विशेष उन्मग्न। आहाहा! पर्याय में मिथ्यात्व की पर्याय का व्यय होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, वह आत्मा अन्दर से उछला। आहाहा! ऐसी बातें! अधिकार पूरा होता है न ? वह जैसा स्वरूप है वैसी पूर्ण प्राप्ति, उसका अधिकार पूर्ण होता है। आहाहा! लिखने में यह पूरा होता है और भाव में यह पूरा होता है। आहाहा!

सर्वांग प्रगट हुआ है;.... असंख्य प्रदेश में जो पूर्ण स्वरूप था। आहाहा! उस स्वरूप के पूर्णानन्द के नाथ की दृष्टि करने पर वह सर्वांग पर्याय में पूर्ण प्रगट हो गया। आहाहा! ऐसी बातें हैं! यहाँ व्रत पालते और दया, दान करते और तप करते और उपवास करते प्रगट होता है — ऐसा नहीं कहा। वह सब तो राग की क्रिया है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण '**अवबोधसिन्धुः**' अवबोधसिन्धु-ज्ञान का समुद्र 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है' आहाहा! ऐसा जो शुद्ध चैतन्यसमुद्र, वह पर्याय में ज्वार आकर उछला - उत्पाद हुआ। आहाहा! विभ्रम का व्यय हुआ, यहाँ तो विभ्रम को ही पृथक् किया है, नहीं तो तीन की यहाँ पूर्णता की है।

यह क्या कहा ? वहाँ तो दर्शन-ज्ञान प्राप्त था, उसने पूछा कि अब आचरण कैसे हो, उसकी पूर्णता प्रगट कैसे हो - यह था। परन्तु वापस यहाँ उठाया है वहाँ से-पहले से। आहाहा! चैतन्यसिन्धु अथवा चैतन्य का पात्र अर्थात् जिसमें चैतन्यपना ही रहा है। आहाहा! भगवान आत्मा में चैतन्यपना ही है, वह चैतन्य का पात्र है, वह राग का पात्र नहीं

है। आहाहा! ऐसा चैतन्यसिन्धु... विभ्रम का नाश करके स्व के तीव्र आश्रय से, आहाहा! पर्याय में उछला-प्रगट हुआ। आहाहा! व्यय हुआ, प्रगट हुआ; ध्रुव तो है। चैतन्यपात्र, ज्ञान के स्वभाव का धारक चैतन्य तो है। आहाहा! ऐसा उपदेश जगत को सूक्ष्म पड़ता है, क्या हो? मार्ग-वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! वह यहाँ सर्वांग प्रगट हुआ।

'**अमी**' अरे! यह समस्त भव्य जीवों... अध्यात्मतरंगिणी में भव्य जीव लिये हैं। वरना यहाँ अमी अर्थात् सब, परन्तु सब अर्थात् अभव्य जीव कोई प्राप्त नहीं कर सकते। आहाहा! **अमी** - यह, भव्य लोक, हे भव्य जीवों! आहाहा! समस्त भव्य जीवों! सामूहिक निमन्त्रण है। आहाहा! 'अमी' यह प्रत्यक्ष जीव जो भव्य हैं, वे '**समस्ताः लोकाः**' समस्त लोक पूरा... भगवान चैतन्यसिन्धु ज्ञान का पात्र और ज्ञानस्वरूप ही जिसमें है, उसमें आकर आओ, सब आओ भगवान! आहाहा! सब भव्य जीव आओ। सामूहिक निमन्त्रण समझते हो, पाटनीजी? तुम्हारी भाषा में कुछ होगा।

श्रोता : सिगरी निमन्त्रण अर्थात् सबको निमन्त्रण।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामूहिक, यह सबको हमारे यह भाषा है। पूरे घर को। कोई बीमार हो और न आ सके वह अलग बात है परन्तु सबको जिमने का। ऐसे कोई अभव्य हो तो भले न आवे। आहाहा! क्या सन्तों का धारावाही उपदेश! आहाहा!

वहाँ तो कहा था न, ३८ में? अबुध जो अप्रतिबुद्ध था, अनादि-अज्ञानी था। उसे गुरु ने उपदेश से समझाया और वह समझ की रटन में लगा, ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... आहाहा! और वह समझा। आहाहा! सम्यग्ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ। यहाँ तो पूर्ण अधिकार है न? उसका जो अधिकार का स्वभाव जितना था, वैसा ही उसकी पर्याय में आचरणरूप हो गया। आहाहा! श्रोता को कहा, वह श्रोता ऐसा हो गया - ऐसा कहते हैं। आहाहा! पंचम काल के सन्त, पंचम काल के श्रोता को (ऐसा कहते हैं।) आहाहा! भव्य जीवों की / योग्यतावाले जीवों को कहते हैं कि प्रभु! तुम परिणमित हो जाओ, हों! आहाहा! आहाहा! चैतन्य का समुद्र-सिन्धु, चैतन्यस्वरूप ही जिसके पात्र अर्थात् जिसके स्थान में चैतन्यस्वरूप ही है। पुण्य और पाप के विकल्प आदि उसके स्थान में नहीं है। आहाहा! जो व्यवहार कहलाता है, उस चैतन्य के पात्र में उसके स्वरूप में उसके स्थान

में नहीं है। आहाहा! ऐसे चैतन्यस्वरूप को, जिसने ज्ञान-दर्शन और चारित्र में प्राप्त किया है, उसे यह कहते हैं। आहाहा! यहाँ मुनि लिये हैं? अरे! **समस्ताः लोकाः** अरे प्रभु! पता नहीं इसे? कि भव्य जीव हैं, उसके अनन्तवें भाग में ही मोक्ष जाते हैं, परन्तु यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो प्रभु! आओ न... आहा!

श्रोता - आमन्त्रण तो सबको है।

पूज्य गुरुदेवश्री - आहाहा! आमन्त्रण सबको है, भव्य जीव को। आहाहा! प्रभु अन्दर तेरे स्थान में आनन्द है न! तू आनन्द का पात्र है; दुःख का-राग का पात्र नहीं। आहाहा! प्रभु! तू शान्ति का पात्र है न? तुझमें शान्ति बसी हुई है। प्रभु! तू पूर्ण प्रभुता का पात्र है न? आहाहा! प्रभु! तुझमें पूर्णता - प्रभुता बसी है। आहाहा! उसका वह पात्र अर्थात् स्थान ही वह तू है। आहाहा! वहाँ नजर करके वहाँ स्थिर हो न प्रभु! आहाहा! ऐसा अधिकार है।

लोग बेचारे बाहर में पड़कर ऐसे के ऐसे अज्ञान में जिन्दगी निकालते हैं। यह व्रत करना, तप करना और उपवास करना... अरे प्रभु! सुन न भाई! विकल्प है, यह तो तेरे स्वरूप में-स्थान में नहीं है। तू ज्ञानपात्र है, आनन्दपात्र है, शान्ति का पात्र है, उसमें रहा हुआ है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! जगत को मान छोड़कर... यहाँ पहले प्रभु है, वहाँ आ जा न! आहाहा! जहाँ तेरा स्थान है, पात्र है। आहाहा! वहाँ आ जा! राग और पुण्य-पाप के स्थान में से छूट जा। आहाहा!

'**समस्ताः लोकाः**' यह '**अमी**' यह भव्य जीव... यह '**अमी**' अर्थात् 'यह' समस्त भव्य जीव, आहाहा! शान्तरस में अतीन्द्रिय आनन्दगर्भित शान्तरस जिसमें है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दगर्भित शान्तस्वरूप जहाँ है... आहाहा! **शान्तरस में एक साथ....** एक साथ, एक के बाद एक, ऐसा नहीं तथा थोड़े नहीं, समस्त। आहाहा! स्वयं हो गया न, इसलिए सब ऐसा ही करो न प्रभु! आहाहा! आहाहा! अब यह बाहर के विवादों में ऐसे और ऐसे रुककर जिन्दगी... अरे प्रभु! चैतन्यदेव है न नाथ! तू तो चैतन्य का पात्र... पात्र अर्थात् स्थान है न! चैतन्य ही जिसका स्वभाव है न! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पात्र अर्थात् स्थान है न! अतीन्द्रिय अकषाय शान्तस्वभाव का पात्र है न!

'**अमी**' यह '**समस्ताः लोकाः**' इस शान्तरस में - वीतरागी परिणति शान्तरस। आहाहा! **एक साथ ही 'निर्भरम्' अत्यन्त मग्न हो जाओ...** आहाहा! जिसमें से निकलना ही नहीं — ऐसे अत्यन्त मग्न होओ। आहाहा! आहाहा! ऐसी वाणी है! देखो तो सही! रामबाण है!! आहाहा! दिगम्बर सन्त, परमात्मा की जगह बात करते हैं। आहाहा! नहीं प्राप्त कर सकते और थोड़े प्राप्त करेंगे, यह यहाँ प्रश्न ही नहीं है। आहाहा! मैं प्राप्त हुआ हूँ तो सब प्राप्त होओ न प्रभु! आहाहा!

'**मज्जन्तु**' आहाहा! है न? है? आहाहा! **मग्न हो जाओ।** '**मज्जन्तु**' स्नान करो। अन्दर मग्न हो जाओ... भगवान पूर्णानन्द का नाथ जिनबिम्ब, वीतरागस्वरूप में मग्न हो जाओ। आहाहा! क्या शैली! क्या मीठी मधुरी! आनन्द की धारा प्रगट कर, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन लगे, बापू! अभ्यास नहीं है न! वस्तु तो - स्वरूप ही ऐसा है।

भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ने पूर्णदशा प्रगट की और लोकालोक को जाना और उन्होंने यह उपदेश किया। जिनवाणी में 'रमन्ते' आता है न? इसलिए वे लोग कहते हैं जिनवाणी में रमन्ते अर्थात् निश्चय और व्यवहार में रमना... अरे भाई! दोनों में नहीं रमा जाता, भाई! जिनवाणी में तो है न, कलश-टीका में?

श्रोता : हाँ है न, चौथा कलश।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने शुद्ध आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को / जीवद्रव्य को उपादेय किया है, एक ही आदर करनेयोग्य कहा है। आहाहा! व्यवहार की पर्याय और राग की वहाँ बात ही नहीं की है। आहाहा! वह तो जाननेयोग्य कहा है।

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण गुणों का पात्र अर्थात् जिसमें पूर्ण गुण रहे हैं — ऐसा जो जीवद्रव्य, अनन्त गुण से भरपूर भरा हुआ भगवान, उसे भगवान ने वाणी में ऐसा कहा है कि वह उपादेय है, वह आदरणीय है, वह स्वीकार करनेयोग्य है, उसका सत्कार करनेयोग्य है, उसकी पूजा करनेयोग्य है, उसकी आरती उतार। आहाहा! निर्मल धारा से उसकी आरती उतार। आहाहा!

'**समस्ताः लोकाः**' **अत्यन्त मग्न...** वापस मग्न होओ, इतना ही शब्द नहीं है।

इस प्रकार मग्न होओ कि बाहर आना ही न पड़े। आहाहा! अन्तिम गाथा, आहाहा! शरीर को नहीं देखना, शरीर है तो मिट्टी-हड्डियों का पिंजरा। आहाहा! अन्दर राग है, उसे मत देखो। कारण कि राग, वह पात्र आत्मा के स्थान में नहीं है। आहाहा!

श्रोता - न देखो तो देखना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री - देखना यह कि पर्याय निर्मल है, उससे आत्मा देखना। जो चैतन्यसिन्धु पात्र है, आहाहा! उसे देखना - ऐसी बात है।

श्रोता - दूसरे अपात्र...

पूज्य गुरुदेवश्री - रागादि अपात्र है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह ज्ञान का स्थान नहीं, आनन्द का स्थान नहीं, शान्ति का पात्र नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

परमात्मा जिनेश्वरदेव दिव्यध्वनि में परमात्मा ऐसा कहते थे। आहाहा! उसे सन्त आड़तिया होकर जगत के लिये प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! ऐसी बात, प्रभु! कहीं अन्यत्र नहीं है। आहाहा! अरे (दु:ख) लगे क्या हो?

श्रोता - यह तो स्वयं अपना स्वरूप निर्णय करने के बाद जान सके कि अन्यत्र कहीं नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री - यह स्वयं ही है, इसे करने का। इसे करने का स्वयं ही है न? इसे स्वयं का करने का है, दूसरा क्या है? आहाहा! इसे कोई करने आता है और कर दे ऐसा है? स्वयं ही मग्न होता है - ऐसा कहा है। सर्वांग प्रगट होता है, वहाँ कोई देव-गुरु-शास्त्र मदद नहीं करते। आहाहा! क्योंकि स्वयं जो स्वभाव प्रगट करना है, उस स्वभाव का तो स्वयं पात्र-स्थान है। आहाहा! ऐसा स्वभाव का समुद्र प्रभु, उसे पर्याय में प्रगट कर। **प्रोन्मग्नः** ध्रुव पूरा (पूर्ण) रखा, उसका आश्रय लेकर **प्रोन्मग्नः** पर्याय उत्पन्न की, विभ्रम का नाश किया — यह उत्पाद-व्यय और ध्रुव सिद्ध किया। आहाहा! यह उत्पादव्ययध्रुव युक्तं सत् आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें हैं और झगड़ा करे, प्रभु! अरे भाई! तुझे कहाँ जाना है? व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है... आहाहा!

श्रोता - किसी समय होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - किसी समय (नहीं), तीन काल में नहीं होता। आहाहा!

वास्तव में तो वह उसका जन्मक्षण है। स्वभाव का सिन्धु भगवान, उसकी दृष्टि करके, ज्ञान करके चारित्र प्रगट किया, वह पर्याय का उत्पत्ति का काल है।

श्रोता - जन्मक्षण है।

पूज्य गुरुदेवश्री - उसका जन्मक्षण है प्रभु! उसे दूसरे की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! ओहोहो! यह क्रमबद्ध में भी यह आ गया। पर्याय का जब ऐसा क्रम है, उस काल में अकर्तापना प्रगट किया अर्थात् दर्शन-ज्ञान और चारित्र को प्रगट किया। आहाहा! क्रमबद्ध भी आ गया और व्यवहार से निश्चय हो, यह भी उड़ गया, क्योंकि व्यवहार-राग में यह स्वभाव नहीं है। आहाहा! यह तो स्वभाव है, वह तो भगवान पात्र में स्वयं में है। आहाहा! इसलिए राग से हो, यह बात नहीं रही। निमित्त से हो, यह नहीं रहा क्योंकि उसकी उत्पत्ति का काल है, उसमें निमित्त ने किया, आकर क्या किया? हो! आहाहा! इन पाँच बोल का विरोध है। क्रमबद्ध का, उपादान-निमित्त में, निमित्त से होता है इसका, व्यवहार-निश्चय में, व्यवहार से होता इसका, अरे प्रभु! बड़ी (चर्चा) अभी चलती है। वहाँ हस्तिनापुर में शिक्षण शिविर यहाँ के विरोध में... अरे भगवान! भगवान! तू यह क्या करता है भाई! लोग भी बेचारे साधारण प्राणी हैं। उन्हें सत्य बात सुनने को नहीं मिलती। इसमें मन्थन करना और इसमें से प्राप्त होता है, पता नहीं पड़ता। आहाहा! मग्न होओ, शान्तरस में मग्न होओ। अतीन्द्रिय आनन्द गर्भित शान्तरस की पर्याय, इसमें वहाँ लीन होओ। आहाहा!

कैसा है शान्तरस? '**आलोकम् उच्छलंति**' समस्त उच्छलन्ति उत्कृष्टरूप से वर्तता है। वह शान्तरस उत्कृष्टरूप से उच्छलंति। उत, उत्कृष्टरूप से अन्दर पर्याय में उछलता है। आहाहा! समझ में आया? यह स्व की अपेक्षा से बात की। '**आलोकम् उच्छलंति**' **समस्त लोक पर्यन्त उछल रहा है।** उत्कृष्टरूप से पर्याय में उछल रहा है। आहाहा!

श्रोता - उत्कृष्ट किसका अर्थ किया?

पूज्य गुरुदेवश्री - इस उच्छलंति का अर्थ किया है। उच्छलंति उत्कृष्टरूप से उछला है। आहाहा! आलोकम् उच्छलंति पूरण स्वरूपपने उत्कृष्टपने प्रगट हो गया।

आहाहा! और दूसरा साधारण अर्थ ऐसा है कि लोक (पर्यन्त) उछल रहा है अथवा वह दशा ऐसी हुई है कि ऊर्ध्व पर्यन्त चली जायेगी, अथवा पूर्ण लोकालोक को जाने, इस प्रकार उछल रहा है। बहुत प्रकार अन्दर, समझ में आया?

पूर्णानन्द का नाथ अवबोधसिन्धु भगवान — ऐसा शब्द है न? '**भगवान् अवबोधसिन्धुः**' आत्मा इन ज्ञान आदि अनन्त शान्तरस और अनन्त गुणों का पात्र — जिसमें रहे हैं, उसमें राग, विकल्प संसार और निमित्त रहे नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान को तू दृष्टि में ले, उसका आदर कर, उसका सत्कार कर। अनादि से रागादि का सत्कार है, उसे छोड़ दे। आहाहा! वह तो यह सत्कार हुआ तो वह सत्कार छूट गया। आहाहा! यह तुझे आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्दगर्भित शान्तरस प्रगट होगा। शान्तरस को अन्तर में अनन्त आनन्द अतीन्द्रिय शान्तपना, वह चारित्र की दशा और उसमें अनन्त आनन्द, वह सुख की दशा.. आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा उत्कृष्टरूप से परिणम जायेगा और उत्कृष्टरूप से होगा तथा उत्कृष्टरूप से लोकालोक को जानेगा। उच्छलन्ति अर्थात् उसका स्वभाव पूर्ण हुआ है और वह ऊर्ध्व चला जायेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है भाई! बहुत सूक्ष्म बापू! लोगों को सत्य मिला नहीं, मिला नहीं। अरे! अभी तो ऐसी प्ररूपणा ऐसी करते हैं, मूल चूककर (कि) व्रत करो, तप करो, अपवास करो, मन्दिर करो, पूजा, भगवान, यात्रा करो और...

श्रोता - वह तो ऐसा कहते हैं कि संयम लो, डरो मत।

पूज्य गुरुदेवश्री - यह क्या बापू, उसे बेचारे को क्या पता? व्यक्ति भद्र था, उसे पता नहीं न, यह व्रत ले लो, संयम लो, नग्न हो जाओ, मत डरो — ऐसा कहते थे, शान्तिसागर! व्यक्ति जरा नरम थे न! क्या हो? यहाँ आये थे चौबीस घण्टे रहे। (संवत्) ९७ में, साधुपने की शुरुआत वहाँ से हुई। अरे बापू! साधुपना तो कहाँ था? यह क्या हो? स्वयं ही कहते और बेचारे ऐसी प्ररूपणा करते परन्तु लोग नहीं समझ सके कि हम वस्त्र छोड़कर बैठे हैं परन्तु कर्म हटे तब होता है न? ऐसा कहते थे। यहाँ कहते थे परन्तु कौन माने वे — ऐसा कहते थे, यह कौन माने? क्या हो भाई! दृष्टि सम्प्रदाय की रखनी है न। आहाहा!

प्रभु! यहाँ तो सत्य की बात है। आहाहा! मेरा नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, वह सत् और आनन्द और ज्ञान का पात्र है। वह तो उसमें तो वह रहा है। आहाहा! और उसमें तो राग तो रहा नहीं परन्तु अल्पज्ञपना, त्रिकालस्वभाव में है नहीं। आहाहा!

श्रोता - अन्दर राग से नग्नपना है।

पूज्य गुरुदेवश्री - अन्दर राग से रहित, विकल्प से रहित, नग्नदशा अन्दर है इसकी। आहाहा! उस स्वरूप को तू सत्कार, उपादेय जान, जिससे तुझे विभ्रम का नाश होगा और तेरी शक्ति का जो संग्रह है, उस शक्ति का संग्रह जो कोठी में है, उस समय जैसे बाहर आता है। आहाहा! वैसे पर्याय में बाहर आयेगा। आहाहा! उसे यहाँ '**प्रोन्मग्नः**' कहा, विभ्रम का व्यय कहा, और पर्याय में उछल गया जो भाव, 'उछलंति' जैसे समुद्र पूर्णिमा के दिन ज्वार में उछलता है, पूर्णिमा के दिन पूरा उछलता है, वैसे यह पूर्ण-पूर्ण उछलता है। आहाहा! '**आलोकम**' समस्त लोक, 'आ' है न! आ, आ अर्थात् समस्त लोकम्, आलोकम् ऐसा शब्द है न? आलोक अर्थात् समस्त लोक, आ अर्थात् समस्त लोक — समस्त भव्य जीव उछलन्ति, उछल जाते हैं, कहते हैं। आहाहा! आहाहा! क्या वाणी! क्या समयसार! इसका एक श्लोक! इसका एक पद..... आहाहा!

श्रोता - वाक्य अधूरा रह गया आपका।

पूज्य गुरुदेवश्री - हो गया वह अन्दर। अन्दर से आता हो वह आता है। आहाहा! यह वस्तु है, जिसमें अनन्त गुण रहे हैं, बसे हैं, उसे यहाँ सिन्धु अवबोध का पात्र कहते हैं। यह ज्ञानपात्र कहा, ऐसा वह अनन्त गुणों का पात्र है। आहाहा! ऐसे समुद्र को अन्तर देखने को नजर कर, कहते हैं। आहाहा! जिससे तुझे अन्तर देखने पर पर्याय में शान्तरस अतीन्द्रिय आनन्द गर्भित अनन्त गुण की व्यक्तता पर्याय में प्रगट होगी। विभ्रम की और मिथ्यात्व आदि की पर्याय का व्यय होगा। आहाहा! डुबाकर — व्यय हो गया परन्तु वापस गया कहाँ?

श्रोता - द्रव्य में, पारिणामिकभाव हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री - द्रव्य में गया। आहाहा! गया अन्दर, मिथ्यात्व गया नहीं, उसकी ऐसी योग्यता एक अन्दर में रह गयी। आहाहा!

श्रोता - मिथ्यात्व नहीं जाता अन्दर में, मिथ्यात्व कहाँ से जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री - ऐसी एक योग्यता गयी अन्दर और यह बाहर आयी — निर्मल मोक्ष का मार्ग अथवा केवलज्ञान आदि दशा बाहर आयी। आहाहा! इसका नाम जीव का पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ। आहाहा! ऐसा है आत्मा।

श्रोता - शुद्धरूप परिणमित हो, उसे ही जीव कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - वही जीव है। अशुद्धरूप परिणमे वह तो राग, विकार, संसार है। वह जीव कहाँ है ? वस्तु तो जीव है परन्तु (शुद्धरूप से) परिणमे, तब उसे जीव कहने में आता है न ? तब उसे ख्याल में आता है न ? जीव तो त्रिकाल कारणपरमात्मा शुद्ध ही है परन्तु स्वीकार करे कि यह है, तब तो पर्याय में शुद्धता हुई। यह क्या कहा ? इसे है, उसका स्वीकार होवे, तब तो वह पर्याय शुद्ध होवे, उसने स्वीकार किया। आहाहा! है, वह इसे जमा कहाँ है ? है तो है त्रिकाली शुद्ध आनन्द का नाथ ही है, शुद्ध परमात्मस्वरूप ही स्वयं विराजता है। निगोद की पर्याय के काल में भी वह है और केवलज्ञान की पर्याय के काल में भी पूर्णानन्द का नाथ विराजमान है। अन्दर द्रव्यस्वभाव से एकरूप (है) परन्तु किसे ? आहाहा! जिसे वह द्रव्यस्वभाव पर्याय में बैठा उसे। समझ में आया ? जिसने उसे पीठ देकर राग और विकल्प को अपना मानकर स्वीकार किया है, उसे तो वह है ही नहीं। विद्यमान चीज भी उसे तो अविद्यमान है। आहाहा! अविद्यमान रागादि चीज, उसे - अज्ञानी को विद्यमान दिखती है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है प्रभु! सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज है ? आहाहा! आहाहा!

भावार्थ : जैसे समुद्र के आड़े कुछ आ जाये तो जल दिखायी नहीं देता.... समुद्र तो बड़ा भरा है अन्दर, परन्तु ऐसे चादर आड़ी आ जाये तो उसका जल नहीं दिखता। **जब वह आड़ दूर हो जाती है....** उसे तोड़ डाले, **तब जल प्रगट होता है;...** जल तो जल है ही परन्तु इसकी पर्याय में ख्याल आता है कि ओहोहो! आहाहा! **वह प्रगट होने पर, लोगों को प्रेरणायोग्य होता है कि 'इस जल में सभी लोग स्नान करो',...** इस जल में सर्व स्नान करो, यह मीठा जल, हों! खारा जल नहीं। इक्षुरस का आता है न ? इक्षु के रस जैसा पानी... भगवान को जो स्नान कराये। आहाहा!

श्रोता - क्षीरसागर में से देव पानी लाते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री - लाते हैं न वहाँ से, वहाँ से घट भरकर लाते हैं इन्द्र, इक्षुरस - क्षीरसमुद्र... जब भगवान को मेरु पर्वत पर ले जाते हैं, तब इन्द्रों की पंक्ति जमती है ऐसे देवों की ठेठ तक, पानी नीचे नहीं रखते, वहाँ से इक्षुरस (क्षीर सागर का जल) के कलश भरकर वह इसे दे, यह इसे दे... आहाहा ! भगवान को स्नान कराते हैं। इक्षुरस से वापस, हों ! लवण समुद्र के पानी से नहीं। आहाहा !

इसी प्रकार.... भगवान आत्मा आनन्दरस से भरपूर भगवान में स्नान कर, जा। आहाहा ! आनन्दरस से तुझे नहलाते हैं और राग को धो डाल। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। व्यवहार के रसिक में पूरा सम्प्रदाय ही व्यवहार का रसिक है। अभी, बस तप करो, अपवास करो, यह करो, यह करो और उपदेश भी ऐसा देते हैं कि इससे लाभ होगा। अरे... अरे... ! प्रभु... प्रभु... प्रभु... क्या हो ? इस कारण बेचारे प्राणी को सत्य नहीं मिलता, सत्य की झाँकी होने का प्रसंग भी इसे नहीं है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, जैसे वह समुद्र का पानी बाहर दिखे और स्नान करे; **इसी प्रकार यह आत्मा विभ्रम से आच्छादित था....** यह राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम - राग से मुझे लाभ होगा — ऐसे मिथ्यात्व में था। आहाहा ! राग की रुचि में ही रुक गया था, आहाहा ! इस कारण भगवान आच्छादित - ढ़ँक गया था। **तब उसका स्वरूप दिखायी नहीं देता था;...** राग की रुचि के प्रेम में, पूरा भगवान आनन्द जल से भरा हुआ दिखायी नहीं देता था। बाह्य तरफ के लक्ष्यवाली वृत्तियों के प्रेम में रुकने से भगवान आनन्दस्वरूप सरोबर जल से भरा हुआ दिखायी नहीं देता था। आहाहा !

अब विभ्रम दूर हो जाने से.... यह राग दया, दान का चाहे तो भगवान की... भक्ति का हो परन्तु वह राग है, वह कोई धर्म नहीं, इस आत्मा के स्वरूप में वह नहीं। ऐसा कठिन काम ! लोगों को तो कहते हैं कितने ही - यह सोनगढ़ तो निश्चयाभासी, अकेले निश्चय की बातें करते हैं — ऐसा कहते हैं, कितने ही बेचारे...

श्रोता - निश्चय की अर्थात् वास्तविक, मोक्षमार्ग प्रकाशक में है।

पूज्य गुरुदेवश्री - आहाहा ! वही सत्य भी है, अन्य व्यवहार तो राग होता है, वह

ज्ञान करने के लिये है और उससे कोई निश्चय होता है (ऐसा नहीं है) आहाहा! धर्मी को भी आत्मा का ज्ञान-दर्शन होने पर स्थिरता पूर्ण न हो तो राग आता है। भक्ति आदि का, पूजा का भी (राग आता है), वह तो बन्ध का कारण है, हेय है, वह शरण नहीं है। आहाहा! ऐसी बहुत कठिन बातें हैं। आहाहा!

विभ्रम दूर हो जाने से यथास्वरूप (ज्यों का त्यों स्वरूप) प्रगट हो गया;.... आनन्द का नाथ आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय गर्भित, वह आनन्द प्रगट हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, तब आनन्द प्रगट हुआ। आहाहा! **इसलिए 'अब उसके वीतराग-विज्ञानरूप शान्तरस में'....** आहाहा! वीतराग-विज्ञान नहीं आता? वीतराग-विज्ञान, हुकमचन्दजी का, पाठशाला की पुस्तिका है न? वीतराग-विज्ञानरूप शान्तरस, एक समय, एक ही काल में **'सर्व लोक मग्न होओ'....** आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान का जहाँ आश्रय लिया, तब पर्याय में पूर्ण आनन्ददशा प्रगट हुई। आहाहा! तब वह कहते हैं कि इसमें सभी जीव एक साथ आकर स्नान करो, प्रभु! आहाहा! इस संसार का मैल धो डालो। आहाहा! ऐसा है, इसमें कोई बड़ी विद्वत्ता और बड़े भाषण करे... ऐसा है, वैसा है और अमुक है.... बापू! यह मार्ग अलग, नाथ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग अलग है भाई! आहाहा! यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा से धर्म मनवाना, यह तो राग से धर्म मनवाना है। यह जैनधर्म ही नहीं, यह तो इसने अजैन को जैन माना है। आहाहा!

श्रोता - जैन के प्रमुख ऐसा ही मानते हैं और प्ररूपण करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - क्या हो भाई! सबको अभी... उन्हें मिला नहीं, सुनने को मिला नहीं, क्या मार्ग है...! आहा! सम्प्रदाय में हमारे गुरु थे, वे बेचारे बहुत भद्र थे, सज्जन थे, क्रिया ऐसी कि अभी दिगम्बर साधु तो उनके लिये बनाया हुआ आहार लेते हैं, यह तो प्राण जाये तो भी इनके लिये पानी की बूँद बनायी हो तो न लें - ऐसे थे सम्प्रदाय के.... गाँव में जावें सात-आठ घर बनियों के हों, जायें कि तुरन्त वे लोग बेचारे पानी बनावें (गर्म करें) महाराज आये हैं और गर्म पानी मिले नहीं, गाँव में जायें वहाँ बहिन! यह पानी ऐसा कैसे? महाराज! हमने स्नान करते हुए बढ़ाया। इतना अधिक पानी स्नान करते हुए बढ़ाया? नहीं लेते थे। दिन के दिन पानी बिना निकाले थे, हमने भी यही किया था, तब उसमें थे, हमारी

सब क्रिया बहुत कड़क थी। छाछ लेकर आते फिर.... छाछ समझे न, मट्ठा। काठी लोगों में बहुत मिलता है, काठी होते हैं न, ग्रासिया। बहुत छाछ मिलती, वह लेकर आते, पानी नहीं। पानी की बूँद पूरे दिन में न पिया हो कितने ही दिन ऐसे व्यतीत होते। यहाँ तो प्रतिदिन उनके लिये पानी का आहार करे – दस सेर पानी का। अररर.... !

उन्हें भी बेचारों को तत्त्व की बात कान में नहीं पड़ी थी। अरेरे! कि यह पर की दया का भाव, वह राग है और वह हिंसा है, वह धर्म नहीं, यह बात (उनके) कान में नहीं पड़ी। आहाहा! बेचारे काल कर गये (स्वर्गस्थ हो गये)। अरे! रास्ते में सांसत चढ़ा। आहाहा! कैसे थे सज्जन! उनकी मिठास, उनकी लौकिक दृष्टि, आहाहा! उनका नैतिक जीवन, परन्तु यह बात कान में नहीं पड़ी कि यह पर की दया पालना राग है और राग है, वह हिंसा (स्व) जीव की है। अररर! अभी मस्करी करते हैं। अरे! इस पर की दया के भाव को राग कहते हैं... परन्तु अब पुरुषार्थसिद्धियुपाय में अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं और वहाँ आत्मा की हिंसा कहते हैं। सुन न प्रभु! तूने सुना नहीं भाई! आहाहा! दया का धर्म तो आत्मा की दया, पूर्णानन्द का नाथ है, जैसी जीवित ज्योति है, उसे उसरूप मानना, वह उसकी दया है। आहाहा! उसे हीनाधिक मानना, वह (निज) आत्मा की हिंसा है। आहाहा! क्या जीव अधिकार! आहाहा! ३८ गाथा, उसका यह कलश! आहाहा! अभिमान उतर जाये, ऐसा है। आहाहा!

वीतराग-विज्ञान शान्तरस में... एक तो वीतरागी-विज्ञान शान्तरस पर्याय में आया, उसमें **'एक ही साथ सर्व लोक मग्न होओ' इस प्रकार आचार्यदेव ने प्रेरणा की है।** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य महासन्त परमेष्ठी... आहाहा! पंच परमेष्ठी में परमेष्ठी थे। आहाहा! आचार्य परमेष्ठी प्रेरणा करते हैं प्रभु! आहाहा! वीतराग शान्तरस में मग्न हुए, जगत को वीतराग शान्तरस में एक साथ सर्व जीव... आहाहा! हम कर सके हैं तो प्रभु! तुम क्यों नहीं कर सकते? तुम भी प्रभु आत्मा हो न? आहाहा! ऐसा कहते हैं। आहाहा! दुनिया के मान-अपमान को छोड़। आहाहा! भगवान निर्मान, अनन्त आनन्द का नाथ, उसका जो मान पर्याय में दिया, वीतरागी विज्ञानदशा, आहाहा! उसमें मग्न होओ (ऐसी) आचार्य ने प्रेरणा की है। **अथवा इसका अर्थ यह भी है कि जब आत्मा का अज्ञान दूर होता है, तब केवलज्ञान प्रगट होता है....** लो! यहाँ तो एकदम...

श्रोता - पूर्ण प्राप्त हो।

पूज्य गुरुदेवश्री - विभ्रम कहा था न? अज्ञान दूर हो, कारण कि अभी बारहवें तक अभी अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् विपरीत नहीं परन्तु कम ज्ञान है न, आहाहा! इसलिए अज्ञान कहा है। आहाहा! **अज्ञान दूर होता है, तब केवलज्ञान प्रगट होता है....** अथवा यह मिथ्यात्व जाये, वह अज्ञान जाये तो केवलज्ञान हुए बिना रहता ही नहीं इसे। आहाहा!

समस्त लोक में रहनेवाले पदार्थ.... आलोकम् उच्छलन्ति कहा था न, उसका दूसरा अर्थ किया कि **समस्त लोक में रहनेवाले पदार्थ एक ही समय ज्ञान में झलकते हैं,....**

श्रोता - पदार्थ उसमें आकर झलकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - एक समय में सब ज्ञान होता है। तीन काल-तीन लोक एक समय में झलकते हैं, यह भी व्यवहार है। अर्थात् पर्याय में जानने में आते हैं। भाषा तो भाषा क्या करे? आहाहा! **उसे समस्त लोक देखो।** लो, यह पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)